



International Journal of Applied Research

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2015; 1(2): 138-140
www.allresearchjournal.com
Received: 14-11-2014
Accepted: 16-12-2014

प्रवीन शर्मा

शोध छात्र, संस्कृत विभाग, म.द.वि.,
रोहतक

वाक्यपदीयम् में स्फोटसिद्धान्त

प्रवीन शर्मा

आरम्भ से ही मनुष्य के वातत्त्व को लेकर विद्वानों में मतभेद रहे हैं। विश्व के सभी भागों में विद्वानों ने इस ग्रन्थि को सुलझाने का प्रयास किया है। भारतीय संदर्भ में आचार्य भर्तृहरि ने स्फोट सिद्धान्त के रूप में इसका हल निकालना चाहा है।

कारिका और वृत्तिरूप वाक्यपदीय के दोनों सन्दर्भों में स्फोट शब्द बिना व्युत्पत्ति और व्याख्या के सहसा चिर्चित हुआ है, जिससे स्पष्ट होता है कि उन दिनों वैयाकरण-समाज में यह शब्द सर्वथा प्रचलित था। यहां स्फोट से सम्बद्ध इतिहास की चर्चा अप्रासङ्गिक न होगी।

पाणिनि ने अष्टाध्यायी में 'अवङ्स्फोटासनस्य' (6.1.123) सूत्र द्वारा आचार्य स्फोटासन के मत का निर्देश किया है। हेमचन्द्र ने काशीवान् को स्फोटासन का पर्याय या नामान्तर बतलाया है। गुरुपद हालदार ने 'व्याकरण-दर्शनेर इतिहास' नामक बंगला भाषा के ग्रन्थ में कहा है कि कक्षीवत् पर्वत में आशिज नामक किसी विद्वान् योगी वैयाकरण ने स्वकीय व्याकरण में शब्द के अर्थप्रकाशक स्वयंप्रभ शक्ति-विशेष का सम्यक् प्रपंच करके उसे स्फोट नाम दिया था, इसलिए इस नये नाम के कारण लोक में भी वे स्फोटासन के नाम से प्रसिद्ध हुए।

हरदत्त ने काशिकावृत्ति की टीका 'पदमंजरी' में सम्भवतः उक्त प्रसिद्धि के आधार पर ही लिखा होगा – 'स्फोटोऽयनं परायणं यस्य सः स्फोटासनः, स्फोटप्रतिपादनपरो वैयाकरणाचार्य'।

आचार्य औदुम्बरायण, जो स्फोटासन से भी प्राचीन हैं तथा यास्क, जो पाणिनि से पूर्ववर्ती हैं, बुद्धिस्थ नित्य शब्द को मानते हैं। ये स्फोट की चर्चा नहीं करते। भर्तृहरि ने महाभाष्यदीपिका में 'येनोच्चारितेन' – की व्याख्या में नित्य शब्द-सम्बन्धी तीन मतों का उल्लेख किया है। वे कहते हैं – अत्रानेकं दर्शनम्। केचिन्मन्यन्ते – (1) 'योऽयमुच्चार्यते क्रमवान् अवरः कश्चिदन्योऽक्रमः शब्दात्मा बुद्धिस्थो विगाहते। तस्मादर्थप्रतिपत्तिः। कुतः? यथैवार्थान्तरनिबन्धनों नार्थान्तरं प्रत्याययति एवं स्वरूपनिबन्धनों नोत्सहते प्रत्याययितुम्।'।

इस विषय में अनेक मत हैं –

(1) कुछ लोगों की मान्यता है कि 'जिस क्रमवान् शब्द का उच्चारण किया जाता है वह निचले स्तर का है; उससे भिन्न कोई अक्रम शब्दरूप है जो बुद्धि में व्यापक रूप से स्थित रहता है, उसी से अर्थ का ज्ञान होता है। कैसे? जैसे अर्थान्तर का बोध कराने वाला शब्द उससे भिन्न अर्थ का बोधक नहीं होता, वैसे ही स्वरूपार्थात्मक शब्द अपने से भिन्न शब्दार्थ का बोध कराने में उद्यत नहीं होता।'।

यह मत स्फोट दर्शन से प्राचीन है और सम्भवतः, औदुम्बरायण, वार्ताक्ष और यास्क का यही मत था। भर्तृहरि दूसरे मत का प्रस्तुत रूप में उल्लेख करते हैं –

(2) अन्ये मन्यन्ते – 'यथा वर्णेषु वर्णतुरीया भागा वर्णजातिं व्यञ्जयन्ति एवं वर्णा वाक्यान्तरेषु ये क्रमजन्मानः अयुगपत्कालास्ते तां पदस्था वर्ण जातिमभिव्यञ्जयन्ति। वृक्षाशब्दो वृक्षत्वम्। जातेरर्थस्य प्रतिपत्तिः। एतच्चार्यस्वरूपं स्फोटः, अयमेव शब्दात्मा नित्यः। ये तु क्रमजन्मानः अयुगपत्कालास्ते व्यक्तयो ध्वन्यात्मानस्ते इति।'।

'जैसे वर्णों में वर्ण के तुरीय (चौथाई) भाग – परमाणु सदृश अवयवीभेद, विद्यमान होकर वर्ण-जाति को अभिव्यक्त करते हैं; उसी प्रकार विविध वाक्यों में विद्यमान पदों में स्थित क्रमजन्मा तथा अयुगपत्कालिक या उच्चरित प्रध्वंसी वर्ण पद-जाति को व्यक्त करते हैं। जैसे – वृक्ष शब्द वृक्षत्व (वृक्ष-शब्दत्व) रूप जाति को व्यक्त करता है; (यह जाति ही स्फोट है – 'अनेक व्यक्त्यभिव्यङ्गया जातिः स्फोट इति स्मृता') और इस स्फोटत्मक जाति से अर्थ का बोध होता है। यह शब्दस्वरूपार्थ या जाति वर्ण, पद और वाक्य रूप स्फोट है और यही नित्य शब्दात्मा है। जो क्रमजन्मा एक साथ न रहने वाली वर्ण-पदात्मक व्यक्तियां हैं, वे ध्वन्यात्मक है।²

'नित्याः शब्दार्थसम्बन्धाः – की वृत्ति में भर्तृहरि ने कहा है – 'केचित्तु प्रतिवर्ण, प्रतिपदं प्रतिवाक्यं चैक एवायं शब्दात्मा क्रमोत्पन्नावयवरूपप्रत्वयवभासः प्रकाशत इति मन्यन्ते।'³

Correspondence

प्रवीन शर्मा

शोध छात्र, संस्कृत विभाग, म.द.वि.,
रोहतक

वृत्ति में 'केचित्' शब्द से निरवयवस्फोटवादियों का ग्रहण किया गया है उनके मत में वर्ण भी परमाणु सदृश अवयवों के भेद से भिन्न होते हैं, उसी प्रकार वर्णरूप अवयवों के भेद से पद तथा पदरूप अवयवों के भेद से वाक्य भी भिन्न होते हैं। वह भेद वर्ण, पद और वाक्य स्फोटों से नहीं होता। वे निरवयव होते हैं। उन विभक्त ध्वनियों से क्रमहीन स्फोट की अभिव्यक्ति होती है।

भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में अन्यत्र भी कहा है – 'वर्ण सावयव होते हैं और वे अवयव क्रमिक रूप में प्रवृत्त देखे जाते हैं। उनके चौथाई अंश का भी चौथाई अंशात्मक संज्ञा हीन रूप होता है, जो व्यवहार में नहीं आता।'

वस्तुतः वर्णों के अवयवों का व्यवहार 'तस्यादि उदात्तमर्हस्वम्' (पां. 1.2.32) 'वर्णकदेशा वर्णग्रहणेन गृह्यन्ते,' आदि शास्त्रों तक ही सीमित है, लोक में उनकी प्रतीति नहीं होती।

व्यक्तियों द्वारा अभिव्यञ्ज्य जाति ही स्फोट है।⁴

(3) तीसरा मत है कि शब्द दो शक्तियों वाला होता है वह आत्म प्रकाशन और अर्थ प्रकाशन में भी समर्थ होता है। जैसे प्रदीप अपने को प्रकाशित करता हुआ निहित अर्थों को भी प्रकाशित करता है जो आध्यात्मिक इन्द्रिय नामक प्रकाश है, वह अपने को प्रकाशित न करते हुए बाह्य अर्थ को प्रकाशित करता है, अतः 'उच्चारितेन' की अभ्यथा व्याख्या की जाती है।⁵

सम्भवतः यह मत 'प्रकाशाप्रकाशयोः प्रकाशयिता शब्दाख्यः प्रकाशः से उद्भूत है। इसका तात्पर्य है – जातवेदा अग्नि तथा आन्तरिक बुद्धि रूप प्रकाश एवं घट-पटादि अप्रकाशरूप बाह्य अर्थों को प्रकाशित करने वाला साधु शब्दरूप प्रकाश है। व्यवहार-नित्यता के आधार पर यह नित्य है। यहाँ कूटस्थनित्यता नहीं है, किन्तु प्रयोग का अविच्छेद ही नित्य कहलाता है।

प्रस्तुत मत से सम्बद्ध साधु शब्द आध्यात्मिक नहीं है, किन्तु बाह्य है। परम्परा के अविच्छेद से प्रयोक्ताओं में नित्य रूप से प्रवृत्त देखा जाता है। साधु शब्दों की उत्पत्ति के विषय में कालात्मक प्रथम कोटि की उपलब्धि सम्भव नहीं, क्योंकि कोई ऐसा काल नहीं जब साधु शब्दों का प्रयोग न किया जाता रहा हो।

पतंजलि ने वर्णादि ध्वन्यात्मक शब्द के अधिष्ठान को – आश्रय को, स्फोट माना है। ह्रस्वादि वर्ण और द्रुतादि वृत्तियां तो स्फोटात्मक आधार पर ही आती जाती रहती है। यह बात 'तर्हि स्फोटः शब्दः, ध्वनिः शब्दगुणः'⁶ से स्पष्ट है। मूल वाचकता स्फोट में ही रहती है; और इसी के आधार पर पदादि में वाचकता आती है। स्फोटात्मक शब्द से ही अर्थ का बोध होता है – यह बात प्रारम्भ में ही 'येनोच्चारितेन' इस सन्दर्भ द्वारा पतंजलि ने कही है। अथवा लोकप्रसिद्ध जो शब्द है, वही इस प्रसङ्ग में शब्द-शब्द से ग्रहण करना चाहिए-यह भर्तृहरि का कथन है।

पतंजलि की शब्द-सम्बन्धी जो द्वितीय परिभाषा है, वह केवल अव्यक्तध्वन्यात्मक शब्द से सम्बन्ध रखती है, लोकप्रसिद्ध अर्थबोधक शब्द से नहीं; जैसा कि उद्योतकार नागेश एवं तदनुयायी मानते हैं। कैयट ने तो इतना ही कहा था कि अन्यत्र ध्वनि और स्फोट के बीच भेद व्यवस्थापित है, अतः यहां अभिन्न रूप से व्यवहार में कोई दोष नहीं है। किन्तु नागेश कहते हैं –

'लोके व्यवहर्तृषु पदार्थबोधकत्वेन प्रसिद्धः श्रोत्रोन्द्रियग्राह्यात्वाद् वर्णरूपध्वनिसमूह एवं शब्द इत्यर्थः। तस्याध्रबोधकताप्यविचारितरमणीयस्यैव लोके प्रसिद्धा। तादृशस्यैव शास्त्रेणान्वाख्यानमिति तात्पर्यम्।'

लोक में व्यवहार करने वालों के बीच पदार्थ बोधरूप में प्रसिद्ध कर्णेन्द्रियग्राह्य होने से वर्णरूप ध्वनि-समूह ही शब्द है। अविचारितरमणीय उस शब्द की अर्थबोधकता भी लोक में प्रसिद्ध है। वैसे ही शब्द का शास्त्र द्वारा अन्वाख्यान किया जाता है।

'प्रतीतपदार्थकतामाह – शब्दं कुरु। मा शब्दं कार्षीः। शब्दकार्यं माणवक इति ध्वनिं कुर्वन्नुच्यते।

'शब्द करो' आदि उदाहरण, ध्वनि (अव्यक्त शब्द) को प्रतीत पदार्थ कहते हैं; घट-पटादि अर्थों को नहीं। इससे पूर्व भर्तृहरि ने प्रतीत पदार्थ की व्युत्पत्ति दी है –

'शब्द इत्येतस्य प्रतीतः पदार्थः ध्वनिः। ध्वनिरस्याभिधेयः।'

शब्द का प्रतीत पदार्थ ध्वनि है। ध्वनि ही शब्द का अभिधेय है। स्पष्ट है कि यह परिभाषा अव्यक्त शब्द को ही लेकर है; लोकप्रसिद्ध वर्णात्मक शब्द को लेकर नहीं।

भाषावैज्ञानिकों का यह कथन कि पतंजलि और भर्तृहरि ने स्फोट को अभिधायक या अर्थबोधक कहीं स्पष्टरूप से नहीं लिखा, उन्होंने तो वर्णानक्रम या इकाई रूप ध्वनि मात्र कहा है। उस स्फोट में कोई रहस्यमयता नहीं है।

आश्चर्य है कि महामनीषी भववान् शंकराचार्य ब्र.सू. भाष्य के देवताधिकरण में पूर्वपक्ष के रूप में 'नादेराहितबीजाद्यं' – इस वा.प. ब्रह्मकाण्ड की कारिका का अनुवाद करते अन्त में समाहार करते हुए कहते हैं –

'तस्मान्नित्याच्छदात् स्फोटरूपादभिधायकात् क्रियाकारकफललक्षणं जगदभिधेयभूतं प्रभवतीति।'⁷

अतः स्फोटरूप नित्य शब्द, जो अभिधायक या अर्थबोधक है, उससे क्रिया, कारक ओर फलरूप अभिधेयात्मक चराचर जगत् और वाङ्मय जगत् उत्पन्न होता है।

इससे स्पष्ट है कि वे स्फोट को अर्थबोधक मानते हैं और उनके इस ज्ञान के स्रोत हैं – पतंजलि और भर्तृहरि। यदि किसी व्यक्ति ने केवल दीपक का वर्णन किया हो तो क्या उससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह दीपक द्वारा अन्धकार के विनाश और घट-पटादि अर्थों की अभिव्यक्ति को स्वीकार नहीं करता?

अर्थात् 'गोश्चरति' यह अखण्ड वाक्यस्फोटात्मक शब्द है। बुद्धि में इसकी अवधारणा किस प्रकार होती है, यह बतलाते हैं –

क्योंकि वे प्रत्येक गकार, औकार, विसर्ग, चकार ओर अकारादि ध्वनियां (वर्ण) अविकल सम्पूर्ण 'गोश्चरति' इस स्फोटात्मक शब्द को अभिव्यक्त करती है। तात्पर्य यह है कि गकार से ही अविकल स्फोट अभिव्यक्त होता है, किन्तु अग्रिम औकार आदि ध्वनियां व्यर्थ नहीं हैं, क्योंकि अभिव्यक्त में भेद होता है। पहली ध्वनि से जो अविकल वाक्यस्फोट व्यक्त होता है, वह अस्फुट होता है; पुनः द्वितीय ध्वनि से स्फुट, तृतीय से स्फुटतर और चतुर्थ से स्फुटतम आदि।

सबसे अन्तिम ध्वनि से पहले होने वाली ध्वनियां, जिसके मन में अभी भावना या संस्कार-विशेष की उत्पत्ति नहीं हुई है, ऐसे श्रोता की बुद्धि में स्फोटात्मक शब्द के अविकल अव्यक्त रूप को ग्रहण कराने वाले तथा उत्तरोत्तर व्यक्त रूप की उत्पत्ति के अनुरूप भावनाबीजों को बोने वाले प्रत्यक्ष ज्ञानों को प्रकट करती है और सर्वान्तिम ध्वनि प्राक्तन ध्वनियों से जनित अव्यक्त स्फोट के विशिष्ट रूपों से प्रभावित सकल भावनाबीजों को लेकर स्फुटतर रूप से विनिविष्ट है स्फोटात्मक बिम्ब जिसमें, ऐसे अत्यन्त व्यक्ततर स्फोट के ज्ञान को उद्भावित करती है।

कोई रत्न-परीक्षक जौहरी जब परीक्षा किये जाने वाले रत्न को हाथ में लेता है तो प्रथम विज्ञान (दर्शन) में वह रत्न कौन-सा है और कैसा है? इसका बोध नहीं होता। तब जौहरी उसे बार-बार देखता है। इस प्रकार उसकी बुद्धि में अव्यक्त रूपों वाले विज्ञानों से (दर्शनों से) रत्न सम्बन्धी संस्कार-विशेषों का आधान होता है। इस विधि से क्रमशः जौहरी के अन्तिम विज्ञान में (चरमे चेतसि) रत्न का वास्तविक रूप प्रकाशित होता है। यदि भिन्न-भिन्न विज्ञानों से विशिष्ट-विशिष्ट संस्कारों का आधान न माना जाय, तो रत्न की वास्तविकता का प्रकाशन नहीं होगा; क्योंकि पहले विज्ञान और पिछले विज्ञान में कोई वैशिष्ट्य ही नहीं रहेगा।

पदस्फोट या वाक्स्फोटात्मक शब्द तो रहे, किन्तु उसका अर्थ के साथ कोई सम्बन्ध न माना जाय, यह संभव नहीं।

ध्वनियां (वर्ण) एक-एक करके उस स्फोट को व्यक्त करती हुई भी उसे तुरन्त स्फुट रूप नहीं दे पातीं, जिससे शीघ्र अर्थबोध हो जाय, किन्तु रत्न की वास्तविकता बोध के समान क्रमशः दो, तीन, चार, पांच, और छह दर्शनों से जनित संस्कारों के साथ चित्त में उत्पन्न अन्तिम विज्ञान में पदस्फोट या वाक्यस्फोट अत्यन्त स्पष्ट (विशद) रूप में प्रकाशित हो उठता है। इसके अनन्तर अर्थबोध का

उदय होता है। इस प्रकार उत्तरोत्तर ध्वनियां भी अनर्थक नहीं होती।

स्फोट का खण्डन करते हुए शंकराचार्य 'शब्द इति चेन्नातः' सूत्र के भाष्यान्त में कहते हैं — 'वर्णाश्चेमे क्रमेण गृह्यमाणाः स्फोटं व्यञ्जयन्ति से स्फोटोऽर्थ व्यनक्ति गरीयसी कल्पना स्यात्।'।

स्पष्ट है कि पतंजलि और भर्तृहरि दोनों स्फोट से अर्थबोध मानते हैं। भर्तृहरि ने 'यथानुपूर्वीनियमः' की वृत्ति में स्पष्ट रूप से वाक्यस्फोट द्वारा वाक्यार्थ का बोध होता है — इसका प्रतिपादन किया है।

दूध और बीज के घी और वृक्ष रूप विकार की प्राप्ति के लिए उसके पूर्व नियत क्रम रूप आनुपूर्वी नियम देखा जाता है। अर्थात् दूध का घृत बनने से पहले मण्डक—दुग्ध का परिवर्तित साररूप, पुनः दधि, फिर, तक्र, फिर नवीनत और अन्त में घी— यह अवस्था—क्रम निश्चित है। इसी प्रकार बीज क्रमशः नाल, अङ्कुर आदि अवस्थाओं को पार करके तण्डुल रूप विकार दशा को प्राप्त करता है। वैसे ही जो दिव्य—दष्टिसम्पन्न नहीं हैं, ऐसे सामान्य लौकिक श्रौताओं की बुद्धियाँ वाक्यस्वरूपग्रहणपूर्वक वाक्यार्थग्रहण रूप प्रधान कार्य के लिए जिनका क्रम नियत है, ऐसे एक के अनन्तर दूसरे परिणाम रूप विभागों के आकार—प्रतीतियों से युक्त होकर वर्णस्फोट, पदस्फोट और वाक्यस्फोटों में प्रवृत्त होती है।

तात्पर्य यह है कि जैसे दूध का अन्तिम विकार घी है; बीज का चरम विकास वृक्ष है, वैसे ही वाक्यस्फोट का अनन्तम कार्य है — वाक्यार्थग्रहण। यह वाक्यार्थ ग्रहण बीज की वागवस्थाओं को पार कर ही होता है। ये बीज की अवस्थाएँ हैं — वर्णस्फोट, पदस्फोट और वाक्यस्फोट।

'स्फोट' इस शब्द में ध्वनि—धर्म और प्रकाश—धर्म विद्यमान है। वैयाकरणों ने प्रायः इसकी प्रकाशता का उल्लेख किया है। शेष नारायण महाभाष्य की टीका 'सूक्तिरत्नाकर' में कहते हैं — 'अर्थस्य स्फोटनात् प्रकाशनात् स्फोटः प्रकाशः।'

संदर्भ सूची

1. वाक्य पदीयम शिवशंकर अवस्थी भूमिका भाग
2. वही, पृ. 17
3. वाक्यपदीयम्, ब्रह्म काण्ड, 23
4. वही, 93
5. वाक्यपदीयम् शिवशंकर अवस्थी, भूमिका भाग
6. तत्परस्तत्कालस्य (पा. 01.01.70) सूत्र का भाष्य
7. 1.2.8.28 सूत्रभाष्य
8. वाक्यपदीयम्, प्रथम काण्ड कारिका, 91